International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 06-02-2026, Accepted: 09-03-2026, Published: 24-03-2026
Volume 12, Issue 1, 2026, Page No. 245-247

अधूरी उल्टी आत्मकथा: एक अनूठा प्रयोग

डॉ. मनीष कुमार जैन
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री कुन्द कुन्द जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खतौली, मुज़फ़्फ़रनगर, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल द्वारा रचित 'अधूरी उल्टी आत्मकथा' अपने शिल्प (उल्टा क्रम) और विषयवस्तु (सार्वजनिक जीवन बनाम व्यक्तिगत जीवन) की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।
प्रायः आत्मकथाएँ जन्म से मृत्यु/वर्तमान की ओर बढ़ती हैं, लेकिन डॉ. भारिल्ल ने 2022 से शुरू कर 1958 तक की यात्रा की है। यह प्रयोग न केवल रोचक है, बल्कि यह दर्शाता है कि वृद्ध अवस्था में व्यक्ति जब पीछे मुड़कर देखता है, तो स्मृतियाँ इसी क्रम में खुलती हैं।
लेखक ने स्वीकार किया है कि बचपन के अभावों को लिखने में उन्हें कोई सार नहीं दिखा। उनका यह कहना कि 'आत्मकथा का अधूरा होना उसकी प्रकृति है', बनारसीदास जैन के 'अर्द्धकथानक' की परंपरा को आधुनिक संदर्भ देता है। यहाँ 'अधूरा' शब्द केवल कालखंड की कमी नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अनासक्ति का भी प्रतीक है।
इस कृति की सबसे बड़ी विशेषता जो आपने बताई, वह है व्यक्तिगत चित्रण का अभाव। इसमें परिवार, मित्र या निजी राग–द्वेष के स्थान पर महत्व देते हैं स्वयं के सार्वजनिक जीवन को। सार्वजनिक जीवन में संस्थागत संघर्ष (टोडरमल स्मारक ट्रस्ट), वैचारिक क्रांतियाँ (नयचक्र, क्रमबद्धपर्याय), सामाजिक चुनौतियाँ (जिनवाणी सुरक्षा आंदोलन), संपादन यात्रा (आत्मधर्म और वीतराग विज्ञान), रचनात्मक प्रबंधन और संकलन आदि प्रमुख हैं।
यह आत्मकथा घटनाओं का स्मरण मात्र नहीं है, बल्कि लेखक के जीवनभर के संपादकीय लेखों और वक्तव्यों का एक सुगठित संयोजन है। यह शैली बताती है कि एक मनीषी का चिंतन समय के साथ कितना स्थिर और तर्कसंगत रहा है कि पुराने लेख आज आत्मकथा का जीवंत हिस्सा बन गए।

मूल शब्दः भारिल्ल, अधूरी उल्टी आत्मकथा, जैन दर्शन, आध्यात्मिक कीवर्ड्स, आध्यात्मिक चिन्तन, तत्त्वप्रचार, तत्त्वज्ञान, वीतराग विज्ञान, आत्मधर्म, नयचक्र, धर्म के दशलक्षण, क्रमबद्धपर्याय, जिनवाणी सुरक्षा, प्रशिक्षण शिविर, टोडरमल स्मारक, वर्णी

डॉ. हुकमचंद भारिल्ल द्वारा रचित 'अधूरी उल्टी आत्मकथा' का दिनांक 25 मई 2025 को प्रकाशन हुआ। डॉ. भारिल्ल जैनदर्शन के एक विश्वविश्रुत मनीषी हैं। साहित्यजगत में भी उनकी प्रतिष्ठा कम नहीं है। अभिनव चिन्तन के क्षेत्र में उनकी विशेष ख्याति है, किन्तु इस बार उन्होंने शैली के क्षेत्र में एक नवीन प्रयोग किया।
जब भी कोई स्वयं का इतिवृत्त लिखता है, तो बचपन से आरंभ कर वर्तमान की ओर चलता है, किन्तु डॉ. भारिल्ल की संभवतः ये पहली और अनूठी परिकल्पना थी कि उन्होंने इस क्रम को बदल दिया। उन्होंने आत्मकथा में वर्तमान से आरंभ किया और शनैः शनैः पहले–पहले की घटनाओं को चित्रित करते गये। इसकी प्रारंभिक पंक्तियॉ देखिए –
''आज माघ शुक्ल त्रयोदशी रविवार तदनुसार 13 फरवरी सन् 2022 का दिन है और प्रातः 5 बजकर 15 मिनिट हुए हैं।
मैं मुबई के ब्रीचकैंडी अस्पताल के पास 301 रूम में अकेला हूँ। अध्यात्मप्रकाश बाहर के सोफे पर सो रहा है; क्योंकि इस रूम में वह इस समय नहीं आ सकता।''[1]
उपरोक्त पंक्तियों में 13 फरवरी 2022 का उल्लेख है। यहाँ से घटनाओं की शुरुआत होती है। और अंत में 1958 में क्षुल्लक गणेशप्रसादजी 'वर्णी' से भेंट के साथ आत्मकथा समाप्त होती है। इसप्रकार 2022 से प्रारंभ कर 1958 अर्थात् 54 वर्षों की जीवन यात्रा इसमें चित्रित हुई है।
यह अभिवन प्रयोग इस रचना को अनेक दृष्टियों से विशेष बनाता है। रही बात 'अधूरी' की तो अधूरापन आत्मकथा की कमी नहीं, अपितु प्रकृति है। कोई भी आत्मकथा कभी पूरी हो ही नहीं सकती है। पण्डित बनारसीदास जैन द्वारा रचित हिन्दी की प्रथम आत्मकथा 'अर्द्धकथानक' (सन् 1641) का तो नाम ही यह बताता है कि यह कथा 'अर्द्ध' है, संपूर्ण नहीं। डॉ. नगेन्द्र की आत्मकथा 'अर्धकथा' भी इस अर्थ में उल्लेखनीय है। इसके अलावा विश्व की सभी भाषाओं में जितनी भी आत्मकथायें लिखीं गईं, वे सभी अधूरी हैं। लेखक जीवन के बिल्कुल आखिरी दिनों में ही क्यों न लिख रहा हो, किन्तु उसके बाद का कुछ हिस्सा तो फिर भी छूट ही जायेगा। अतः आत्मकथा का अधूरा होना स्वाभाविक है।
आत्मकथा के स्वाभाविक अधूरेपन के साथ–साथ डॉ. भारिल्ल की आत्मकथा में एक विशेष प्रकार का अधूरापन है। उन्होंने पीछे–से–पीछे जाकर 1958 तक का चित्रण किया है। उस समय उनकी आयु 23–24 वर्ष की थी। इसके पहले का उन्होंने कोई वर्णन नहीं किया। चाहते तो किया जा सकता था। अन्य कथाकारों ने बहुत किया है। बचपन, किशोर, तरुण, यौवन अवस्थाओं का अन्य कथाकारों ने भर–भरकर चित्र खींचा है। दलित कथाकारों की कथाओं का बहुत बड़ा हिस्सा बचपन और कच्ची उम्र में भोगी गई जातिगत पीड़ाओं के लिए समर्पित है। अन्य आत्मकथ्यों में भी उम्र के इस पड़ाव को बारीकी के साथ उकेरा गया है। उम्र के उभार को कोई कैसे उपेक्षित कर सकता है। लेकिन डॉ. भारिल्ल ने इन सब में तनिक भी रुचि नहीं दिखाई। अतः उस कालखण्ड के अभाव में यह आत्मकथा विशिष्ट अर्थ में 'अधूरी' है, सामान्य अर्थ में नहीं। वे लिखते हैं –
''अत्यधिक अभावों के बीच बीते बचपन के बारे में कुछ भी लिखने में मुझे कुछ सार नहीं दिखता; किन्तु जीवन के अन्त समय में मैं जैसा जीवन जी रहा हूँ; उसके प्रतिपादन में कुछ सारभूत बातें लिखी जा सकती हैं।
यद्यपि तेजी से भागते हुए इस जीवन का कोई भरोसा नहीं है; कभी भी समाप्त हो सकता है; इस कथा का अधूरा रहना सहज ही है; तथापि जितना लिखा जा सके, उतना ही सही....।
अतः यह कथा अधूरी ही रह जाएगी – यह मानकर ही आरम्भ कर रहा हूँ; इसलिए इसके नाम में अधूरा शब्द जोड़ रहा हूँ और आदि से आरंभ न करके अन्त से आरंभ कर रहा हूँ।''[2]

डॉ. भारिल्ल मूलतः एक आध्यात्मिक प्रवक्ता व लेखक हैं। कथा द्वारा पाठकों का मनोरंजन करना उनका उद्देश्य नहीं है। उनके उद्देश्य आध्यात्मिक मूल्यों की अभिव्यक्ति है। इस आत्मकथा में भी उनका यह रुझान पग–पग पर दिखता है। स्थान–स्थान पर वे विशुद्ध आध्यात्मिक चिंतक हो जाते हैं। ऐसे स्थलों पर कथा अत्यन्त गौण हो जाती है।

डॉ. भारिल्ल के संपूर्ण रचना–संसार को देखकर सहज ही ये अनुमान लगाया जा सकता है कि यह संपूर्ण आत्मकथा अधूरी और उल्टी तो है ही, लेकिन ये इसी प्रकार क्रमशः नहीं लिखी गई। उनके अनेक वक्तव्य इसमें इस रूप से पिरोये गए हैं, जो किसी लेख, संपादकीय आदि के रूप में कभी प्रकाशित हुए थे। उन्ही वक्तव्यों को आत्मकथा का हिस्सा बनाकर इसे विकसित किया गया है। नयचक्र, धर्म के दशलक्षण, क्रमबद्धपर्याय आदि पर विद्वानों के अभिमत वाले अंश संकलन मात्र हैं। यद्यपि इनका ऐतिहासिक महत्व है, लेकिन इन अंशों को आत्मकथा के रूप में आकार देना, इसे हम रचनात्मक प्रबंधन कह सकते हैं। समयानुसार समसामयिक चुनौतियों और ज्वलनशील बिन्दुओं पर उनके विचार अत्यन्त संतुलित और औचित्यपूर्ण हैं। उस समय पत्रिकाओं में व्यक्त उनके विचारों को शब्दशः आत्मकथा में पिरो देना भी लेखकीय प्रबंध–कौशल का अच्छा उदाहरण है।

इस आत्मकथा में 19 अध्याय हैं। जिनमें पहले दो अध्याय 'मुक्ति का मार्ग साथ का मार्ग नहीं है' एवं 'क्या भगवान करुणानिधि हैं?' ये उनके वैचारिक स्थल हैं, जहाँ उनका आध्यात्मिक प्रवक्ता वाला रूप मुखर हुआ है। तीसरा अध्याय 'पूजन–विधान का तत्त्वप्रचार में योगदान' पूजन साहित्य में अध्यात्मिक तत्त्वों के समावेश से जनमानस में हुए तात्विक आकर्षण को रेखांकित करता है।

चौथा अध्याय 'निश्चय–व्यवहार', पाँचवाँ अध्याय 'धर्म के दशलक्षण', छठवाँ अध्याय 'क्रमबद्धपर्याय'–ये इनकी तीन रचनाओं नयचक्र, दशलक्षण एवं क्रमबद्धपर्याय के संबंध में उनका संक्षिप्त वक्तव्य एवं इन पुस्तकों में पहले से ही प्रकाशित अन्य विद्वानों के अनेक अभिमतों का संकलन है।

अध्याय सातवाँ 'आत्मधर्म', अध्याय आठवाँ 'वीतराग विज्ञान' है। डॉ. भारिल्ल ने दो पत्रिकाओं का संपादन किया; पहली 'आत्मधर्म' एवं दूसरी 'वीतराग विज्ञान'। जैन अध्यात्म जगत में आत्मधर्म जैसी क्रान्तिकारी पत्रिका दूसरी नहीं हुई। आत्मधर्म पर तत्कालीन गणमान्यों के अभिमतों का संकलन यहाँ भी किया गया है। कुछ कारणों से जब आत्मधर्म का कार्य उनसे छूट गया तो 'वीतराग विज्ञान' का जन्म हुआ। वे लिखते हैं–''पूज्य गुरुदेवश्री के महाप्रयाण के उपरान्त जो उथल–पुथल हुई, उसकी आँधी में आत्मधर्म भी मेरे हाथों में सुरक्षित नहीं रह सका। मैंने भी हिम्मत नहीं हारी; परिणामतः वीतराग–विज्ञान का जन्म हुआ। पहले ही अंक में मैंने हर पेज पर लिखा कि 'वीतराग–विज्ञान आत्मधर्म का ही नया नाम है।' इसमें आपको वह सब प्राप्त होगा, जो विगत दिनों में आत्मधर्म में प्राप्त होता रहा।''[3] इस अध्याय में वीतराग–विज्ञान शब्द के भावार्थ पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। डॉ. भारिल्ल के स्वर्गवास होने के उपरान्त भी वीतराग–विज्ञान का प्रकाशन अनवरत चल रहा है।

डॉ. भारिल्ल के जीवन का बहु अंश जयपुर में बीता। जयपुर स्थित पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट उनके नाम का पर्यायवाची–सा बन गया। पण्डित टोडरमल स्मारक के निर्देशक रहते हुए उन्होंने विद्वता के गंभीर और उच्च मानक स्थापित किए। वे आध्यात्मिक प्रवक्ता, लेखक, साहित्यकार आदि होने के साथ–साथ कुशल नीति–निर्धारक, प्रशासक, नवाचारोन्मुख एवं अथक कर्मयोगी थे। आगे के अध्यायों में प्रायः उनके इन्हीं रूपों का परिचय मिलता है।

पण्डित टोडरमल स्मारक में कार्य सम्भालने के उपरान्त उन्होंने दो कार्य किए। वे स्वयं लिखते हैं–''जयपुर आने के बाद मैंने दो प्रकार से कार्य आरंभ किया। एक तो ऐसे कार्य, जिन से कार्य होता दिखे, तत्काल लाभ हो। जैसे–विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले जैन छात्रों के लिए छात्रावास। छात्रावास में रहने वाले छात्रों को धार्मिक संस्कार देना, सामान्य तत्त्वज्ञान कराना एवं जैनाचार का सामान्य ज्ञान कराना।

दूसरे वे ठोस कार्य, भले ही जिनका फल तत्काल प्राप्त न हो; पर जैन तत्वज्ञान का गहराई से प्रचार–प्रसार हो। इसके लिए जैनदर्शन के सामान्य ज्ञान के लिये पाठ्यक्रम तैयार करना, तदनुकूल पाठ्य पुस्तकें तैयार करना, गाँव–गाँव में पाठशालाएँ खोलना, उनमें वह पाठ्यक्रम पढ़ाना, उनकी परीक्षा लेना, छात्रों को उचित प्रमाण–पत्र देना इत्यादि।

ये सब कार्य तो करने ही थे, समाज में उन्हें लागू करवाना, इसके लिये समाज को तैयार करना, गाँव–गाँव में शिविर लगाना। उन शिविरों में जाना, वहाँ पढ़ाना, पढ़ाना सिखाना, एतदर्थ प्रशिक्षण शिविर लगाना।''[4]

नौवाँ अध्याय 'छात्रावास एवं पाठशालाएँ', दसवाँ अध्याय 'प्रशिक्षण शिविर' उनके इन्हीं उपक्रमों के दस्तावेज हैं।

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर का उदय होना आध्यात्मिक जगत में किसी क्रान्ति से कम नहीं था। इसका उद्घाटन 24 जुलाई, 1977 को श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी जैन के द्वारा संपन्न हुआ। यह संस्था विश्वव्यापी जैन समुदाय की अमूल्य धरोहर है। इसने समाज को जो दिया, उससे समाज कभी उऋण नहीं हो सकता। इसी महाविद्यालय की तर्ज पर बाद में अनेक संस्थाएँ खुलीं, जो वर्तमान में चल रहीं हैं। ग्यारहवाँ अध्याय 'महाविद्यालय' इसी की स्थापना की घटना को का विवरण देता है।

डॉ. भारिल्ल जैन समाज के एक ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे, जिसका विरोध भी कम नहीं था। उनके द्वारा लिखित, अनुमोदित, अध्यापित साहित्य का स्थान–स्थान पर विरोध भी बहुत होता था। कहीं–कहीं असामाजिक तत्वों द्वारा उस साहित्य को अपमानित भी किया जाता था। नफरत का आलम यह था कि महान आचार्यों द्वारा रचित प्राचीन शास्त्रों को भी अपमानित किया जाने लगा। अनेक स्थानों पर मंदिरों से बाहर करने लगे। ऐसी विकट परिस्थितियों में जिनवाणी की सुरक्षा और समाज में एकता कायम रहे, इसके लिए किए गए प्रयासों का चरणबद्ध विवरण बारहवें अध्याय 'जिनवाणी सुरक्षा एवं समाज एकता आन्दोलन' में प्रस्तुत किया गया है। डॉ. भारिल्ल की कुशल नेतृत्व शक्ति और उनकी रीति–नीति पर गांधीजी के सत्याग्रह व अहिंसात्मक आंदोलनों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

तेरहवाँ अध्याय 'दिगम्बर जैन महासमिति और आचार्य कुन्दकुन्द वर्ष' दिगम्बर जैन समाज में होने वाले राजनैतिक उथल–पुथल वाला प्रकरण है। दिगम्बर जैन महासमिति कैसे कुछ स्वार्थों के चलते अपने मूल उद्देश्य से भटक गई; वह भी कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दी के मांगलिक वर्ष में। उस समय के डॉ. भारिल्ल के संतुलित, तार्किक, सटीक और मर्मस्पर्शी वक्तव्य मूलतः पठनीय हैं।

चौदहवाँ अध्याय 'पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की रीति–नीति' संस्था के उद्देश्यों को रेखांकित करता है। विरोध के बीच संस्था की स्पष्ट एवं पवित्र रीति–नीति का प्रभाव है कि अनेक झंझावातों में भी यह वृक्ष पूरे आत्मगौरव के साथ लहलहा रहा है।

अध्याय पंद्रहवाँ 'एक ही रास्ता' लेखक के अपने समूह द्वारा किए गए सिद्धान्त–विरुद्ध कार्यों की भर्त्सना, उसके दुष्प्रभावों एवं उसके निदान के लिए शान्तिपूर्ण प्रयासों को दर्शाया है। लेखक किसी भी परिस्थिति में सिद्धान्तों से समझौता करने के पक्ष में नहीं है। गलत कहीं भी हो, अपनों में या अन्य में; लेखक उसे तनिक भी स्वीकार नहीं करता। 'धन्यावतार' एवं सूर्यकीर्ति प्रकरण की वे निन्दा करते हैं। इस प्रकरण के जिम्मेदार लोगों के

गैरजिम्मेदारीपूर्ण रवैया उन्हें परेशान कर रहा है। कोई रास्ता नहीं सूझ रहा –

''भाई, एक बात यही भी है कि उत्तेजना की सामग्री प्रदान करने वाले सोनगढ़ वाले भी हमारे साधर्मी भाई हैं और इसका लाभ उठाकर उत्तेजना फैलानेवाले बन्धु भी हमारे साधर्मी भाई हैं। हम दोनों से ही सच्चे हृदय से अनुरोध करते हैं कि वे इस नाजुक स्थिति को पहिचानें और कोई ऐसा कार्य न करें कि जिससे समाज में विघटन की स्थिति उत्पन्न हो, क्योंकि इसमें सम्पूर्ण दिगम्बर समाज की ही हानि न हो।

हमारे पवित्र हृदय से किए गये इस अनुरोध को संपूर्ण समाज पवित्र हृदय से ही ग्रहण करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है; फिर भी यदि कुछ हुआ तो हमारे पास एक ही रास्ता शेष रह जाता है कि हम महात्मा गांधी के बताये रास्ते पर चलकर आत्मशुद्धि के लिए सामूहिक उपवास करें, गाँव–गाँव में शान्ति के लिए प्रार्थनाएँ करें।''[5]

लेखक के आध्यात्मिक गुरु श्री कानजी स्वामी के देहवियोग के उपरान्त उपजी चुनौतियों को प्रस्तुत करने वाला यह सोलहवाँ अध्याय 'जरा मुड़कर देखें'; मूलतः पठनीय है; जहाँ लेखक की बुद्धि और हृदय दानों समानान्तर रूप से रेल की पटरियों की तरह चलते हैं।

बारहवें अध्याय के बाद ये सभी प्रायः उनके संपादकीय हैं, जो आत्मकथा का अंश बन गए। इसकारण तत्कालीन परिस्थितियों की चित्रण एकदम जीवंत हो उठा है।

सत्रहवाँ अध्याय 'एक विहंगावलोकन' तत्कालीन तत्त्वप्रचार–प्रसार में संलग्न विद्वानों के स्मरण में लिखा गया है। लेखक के द्वारा प्रारंभ प्रशिक्षण शिविरों की सफलता का उल्लेख भी किया गया है। उन्नीसवाँ अध्याय 'विदेशों में जैनधर्म' में 1985 जून–जुलाई–अगस्त के महीनों में की गई उनकी विदेश यात्राओं का स्मरण है। अंतिम उन्नीसवें अध्याय में क्षुल्लक गणेशप्रसादजी 'वर्णी' से भेंट का उल्लेख है।

इस प्रकार संपूर्ण आत्मकथा संघर्ष, समर्पण एवं साहस की कहानी है। पुराने संपादकीय, लेखों आदि को व्यवस्थित करके आत्मकथा का यह रूप तैयार किया गया है। इस आत्मकथा में डॉ. भारिल्ल के सार्वजनिक जीवन का ही चित्रण है। व्यक्तिगत जीवन का चित्रण नगण्य है। हिन्दी साहित्य की यह आत्मकथा इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि इसमें लेखक के व्यक्तिगत जीवन का चित्रण शून्य है। इसमें न पत्नी है, न बच्चे; न दोस्त हैं, न दुश्मन; न पर्वतों की शृँखलाएँ हैं, न उपवनों का सौन्दर्य; राग–विराग के व्यक्तिगत क्षण यहाँ नहीं हैं। यहाँ है तो केवल सार्वजनिक जीवन और इस यात्रा में आने वाली चुनौतियाँ। इस आत्मवृत्त के माध्यम से लेखक ने रीति–नीति संबंधी जो भी विवरण दिए, वे इसे महत्वपूर्ण बनाते हैं।

संदर्भ

1. अधूरी उल्टी आत्मकथा: डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल: प्रथम संस्करण: 25 मई 2025: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4 बापूनगर जयपुर: पृष्ठ क्रमांक 03
2. वही, पृष्ठ क्रमांक 04
3. वही, पृष्ठ क्रमांक 77
4. वही, पृष्ठ क्रमांक 85
5. वही, पृष्ठ क्रमांक 139